

व्यस्त रहो स्वस्थ रहो

(कहानी-संग्रह)

लेखक

प्रो. वीरसागर जैन

प्राक्कथन

कहानी किसे प्रिय नहीं होती ? मुझे भी बहुत प्रिय है । सबकी तरह मैं भी बचपन से कहानियों का बहुत शौकीन रहा । परन्तु औरों में और मुझमें अंतर यह रहा कि औरों का कहानी-प्रेम तो जैसे-जैसे आयु बढ़ती है वैसे-वैसे प्रायः कम होता जाता है, परन्तु मेरा कहानी-प्रेम कम होने की बजाय बढ़ता ही जाता है ।

मैंने जब हिन्दी से एम. ए. किया था, तब मुझे मेरे गुरुजनों ने कहानी का महत्त्व, कहानी के तत्त्व, कहानी पढ़ने का तरीका, कहानी की समीक्षा, कहानी का इतिहास, नई-पुरानी कहानी में अंतर आदि अनेक विषय बहुत गहराई से पढाये थे । मैं उससे बहुत अधिक प्रभावित हुआ । जिस कहानी को मैं मात्र मनोरंजन का साधन समझा करता था, वह इतनी गम्भीर हो सकती है, इसका मुझे पहली बार अहसास हुआ और मेरा कहानी-प्रेम बहुत बढ़ गया । मैंने बचपन में जो प्राकृत जैनागम की या पंचतन्त्र-हितोपदेश आदि की कहानियाँ पढ़ी थीं, वे भी अब और अधिक महत्त्वपूर्ण भासित होने लगीं ।

इसके बाद मुझे दिल्ली में आचार्य विद्यानन्दजी मिले, जो कहानी-साहित्य के भी बड़े गहरे विद्वान् थे । उनसे तो कहानी के विषय में मैंने इतनी बातें सुनी हैं कि कुछ बता ही नहीं सकता । वे स्वयं सम्यक्त्वकौमुदी आदि की अनेक कहानियाँ भरी सभा में अत्यंत सरस रीति से सुनाया करते थे और कहते थे कि 'दृष्टान्ते स्फुटायते मतिः' अर्थात् कहानी या दृष्टान्त से कोई भी विषय आसानी से बुद्धि में स्पष्ट हो जाता है । वे छोटे-छोटे दृष्टान्त भी बहुत सुनाया करते थे । मैंने उनके कुछ दृष्टान्तों का संकलन भी किया है, जिन्हें आप प्रस्तुत कहानी-संग्रह की 'दृष्टान्ते स्फुटायते मतिः' शीर्षक कहानी में पढ़ सकते हैं । वह वास्तव में मेरी कोई कहानी नहीं है, अपितु उनके कुछ दृष्टान्तों का ही संकलनमात्र है । उसको मिलाकर इस कहानी-संग्रह में मेरी दस कहानियाँ हैं । आशा है आपको अच्छी लगेंगी । कहानियाँ मनोरंजक होने के साथ-साथ महत्त्वपूर्ण भी हैं, अतः इनको पढ़ते/सुनते समय आप हँस भले ही लेना, पर मेरी कहानियों को हँसी में मत उड़ा देना ।

प्रस्तुत संग्रह के परिशिष्ट में मैंने अपनी कुछ लघु कथाएँ भी जोड़ दी हैं, जो मैंने बहुत पहले हिन्दी से एम.ए. करते समय लिखी थीं । ये सभी प्रायः व्यंग्यात्मक हैं और समाज की समस्याओं को सुधार की भावना से उजागर करती हैं ।

-वीरसागर जैन

भूमिका

कहानियाँ बच्चों के लिए अवश्य लिखी जाती हैं, पर कहानियों को लिखना और समझना – दोनों ही कोई बच्चों का खेल नहीं है, उसके लिए बड़ी विद्वत्ता अपेक्षित होती है।

लिखने और समझने के लिए ही क्या, कहानी को कहने तक के लिए भी बड़ी कुशलता अपेक्षित होती है। यही कारण है कि कहानी को सुनने/पढ़ने/जानने के बाद भी उसे ठीक से कहने का कार्य सैकड़ों-हजारों में से कोई एक-दो लोग ही ठीक से कर पाते हैं। कहानी सुन/पढ़ सब लेते हैं। पर उसे ठीक से कहना सबके बस की बात नहीं होती। कहानी का एक-एक वाक्य ही नहीं, एक-एक शब्द भी बहुत सुगठित होता है। यदि उसे कहने में जरा-सी भी लापरवाही हो जाये, जरा-सा भी कुछ अपनी तरफ से जोड़ या छोड़ दिया जाये तो बात बिगड़ जाती है, रस भी भंग हो जाता है, अतः उसे कहने में भी बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है।

कहानी के लेखक को तो और भी अधिक विद्वान् होना चाहिए, उसे 'सर्वशास्त्रकलाविद्' होना चाहिए। उसे वास्तु, ज्योतिष, अर्थ, समाज, राजनीति, आयुर्वेद साहित्य व्याकरण, मनोविज्ञान, जीवविज्ञान आदि लगभग सभी शास्त्रों का ज्ञाता होना चाहिए, अन्यथा उसकी कहानियों में इनके विरुद्ध कथन आने से अनेक दोष उत्पन्न हो जायेंगे।

कहानी शिक्षा का भी सबसे सशक्त माध्यम है। प्राचीन काल में सभी शास्त्रों की शिक्षा कहानियों के माध्यम से दी जाती थी। बड़े से बड़े अज्ञानी को भी हमारे पूर्वजों ने कहानियों के माध्यम से बड़ी ही सहजता से समझाने में सफलता प्राप्त की है। 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' इसी के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। कहानी में जो रोचकता नाम का अद्भुत गुण होता है, वह किसी का भी हृदय-परिवर्तन करने में जादू जैसा कार्य करता है। कभी-कभी तो एक ही कहानी पूरा जीवन बदल देती है।

कहानियों के सुनने/पढ़ने से स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा रहता है, क्योंकि इनसे व्यक्ति का मन प्रसन्न हो जाता है, उसके सारे दुःख-दर्द, चिंता-फ़िक्र, तनाव-अवसाद आदि दूर हो जाते हैं।

प्राचीन काल में तो सोने से पहले कहानी सुनने की प्रथा ही थी, क्योंकि इससे नींद भी अच्छी आती है, दुःस्वप्न नहीं आते, शुभ स्वप्न आते हैं। आज इस प्रथा के छूटने से अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं। परिवार में एकता और स्नेह का वातावरण बनाये रखने में भी कहानियों का अद्भुत योगदान होता है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक ज्ञाताज्ञात लाभ कहानी सुनने-समझने से होते हैं। अतः हम सबको खूब कहानियाँ सुननी-सुनानी चाहिए। बस, इतना ही ध्यान रहे कि ये कहानियाँ सुकथा ही हों, कुकथा नहीं। सुकथाएँ जितनी हितकर होती हैं, कुकथाएँ उतनी ही अहितकर होती हैं। सुकथाएँ सुनना जितना आवश्यक है, कुकथाओं से बचना उससे भी अधिक आवश्यक है। जैन आचार्यों ने बहुत अधिक सुकथाओं का प्रणयन किया है। हम सबको उनके अध्ययन, श्रवण, श्रावण द्वारा अपना और अन्य परिजन-पुरजनों का जीवन मंगलमय बनाना चाहिए।

-वीरसागर जैन

अनुक्रम

प्राक्कथन

भूमिका

1. व्यस्त रहो स्वस्थ रहो
2. मनमानी मत करो, जिनवाणी की सुनो
3. सदानन्द नगर की एक्सक्लूसिव रिपोर्ट
4. परामर्शदाता कैसा हो
5. दोष देखने की आदत
6. विश्व मूर्ति प्रतियोगिता
7. समस्या की जड़
8. कटोरे में कचरा है
9. पत्नी का वैराग्य
10. मोह की महिमा
11. अमांगलिक पुरुष
12. भारतवर्ष के राजा
13. राजा बड़ा या गुरु
14. सीख दीजिए ताहि को जाको सीख सुहाय
15. आगम और परमागम
16. मुक्ति का उपाय
17. अविवेकी बन्दर
18. अहिंसा का मार्ग
19. भंगी या प्रतिज्ञाभंगी
20. शिक्षा ही उन्नति का आधार
21. दृष्टान्ते स्फुटायते मतिः

परिशिष्ट : कतिपय लघु कथाएँ

व्यस्त रहो स्वस्थ रहो

-प्रो. वीरसागर जैन

‘व्यस्त रहो, स्वस्थ रहो’- यह सारगर्भित सूक्ति मुझे आचार्य श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने सुनाई है। वे इसे अनेक बार सुनाते रहते थे और इसके साथ एक महत्त्वपूर्ण कहानी भी सुनाया करते थे। उन्होंने मुझे और भी अनेक कहानियाँ सुनाई हैं, परन्तु आज मैं उनकी इस कहानी को सभी के लाभार्थ लिपिबद्ध कर रहा हूँ। यह कहानी मन पर विजय प्राप्त करने की अद्भुत कला सिखाती है। जो लोग इस कहानी को शांति से पढ़ेंगे-समझेंगे, उनको अपूर्व लाभ होगा।

एक किसान था। बहुत ही कठोर परिश्रमी, दिन-रात काम में लगे रहने वाला। उसे कभी भी अपने कामों से थोड़ी-सी भी फुर्सत नहीं मिलती थी, बहुत ही व्यस्त रहता था; लेकिन उसकी एक विशेषता थी कि वह नित्य थोड़ी देर पूजा-पाठ अवश्य करता था। कितना भी व्यस्त हो, पर पूजा नहीं छोड़ता था। उसकी ऐसी धर्मनिष्ठा देखकर एक दिन एक देव प्रगट हुआ। बोला- “मैं तुम्हारी धर्मनिष्ठा से बहुत प्रभावित हूँ, कुछ वरदान मांगो।”

किसान बोला- “मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, मेरे पास कुछ भोगने का समय ही नहीं है।”

देव ने बहुत आग्रह किया- “कुछ-न-कुछ तो अवश्य ले लो, मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।”

किसान- “ठीक है, यदि तुम कुछ देना ही चाहते हो तो तुम मुझे एक अच्छा-सा कार्यकर्ता दे दो, क्योंकि मेरे पास काम बहुत है।”

“तथास्तु” - कहकर देव ने किसान को एक बहुत ही अच्छा कार्यकर्ता दे दिया।

किसान ने अब अपने कार्यकर्ता को बहुत काम बताना शुरू किया – “जाओ जल्दी खेत के चारों ओर बाड़ लगाओ।”

कार्यकर्ता तो अलौकिक था, एकदम जादुई, पूरा राक्षस। अतः शीघ्र गया और कुछ ही क्षण में लौटकर आ गया – “आपका काम पूरा हो गया है मेरे आका, अब जल्दी और काम बताइए, अन्यथा मैं आपको खा जाऊंगा।”

किसान – “खेत के चारों कोनों पर चार कुँए खोदो सिंचाई के लिए।”

कार्यकर्ता राक्षस पुनः शीघ्र गया और कुछ ही क्षणों में लौटकर वापिस आ गया – “आपका काम पूरा हो गया है मेरे आका, अब जल्दी और काम बताइए, अन्यथा मैं आपको खा जाऊंगा।”

किसान जो भी काम बताता, उसे वह राक्षस इसीप्रकार शीघ्र भलीभांति सम्पन्न करके आ जाता था। किसान उसके कार्यों से तो प्रसन्न था, किन्तु वह जो ऐसा बोलता था कि मैं आपको खा जाऊंगा, उससे बहुत डरता

था, अतः उसने एक दिन उस देव का आह्वान किया जिसने उसे वह राक्षस कार्यकर्ता वरदानस्वरूप प्रदान किया था।

देव प्रकट हुआ – “कैसे हो भक्तप्रवर ? कैसा है हमारा कार्यकर्ता ? कोई समस्या तो नहीं ?”

किसान – “कार्यकर्ता तो निश्चय ही बहुत अच्छा है, शीघ्र एवं भलीभांति सब कार्य सम्पन्न करता है, किन्तु”

“किन्तु क्या ?”

“किन्तु हे देवराज, वह बारम्बार मुझे खा जाने की धमकी देता है।”

“देखो, यदि उसे खाली छोड़ोगे तो ऐसा ही होगा। तुमने कहा था कि तुम्हारे पास बहुत काम है, अतः मैंने तुम्हें बहुत काम करने वाला उत्कृष्ट कार्यकर्ता दिया। उसे हमेशा काम में लगाये रखा करो, फिर तुम्हें कभी कोई परेशानी नहीं होगी।”

“मगर इतना काम अब मैं उसके लिए कहाँ से लाऊँ ?”

“देखो, पहले उससे कहना कि सौ फुट गहरा गड्ढा खोदो, गड्ढा खुदने के बाद कहना कि कहीं से एक हजार फुट लम्बा बांस ढूँढ़ कर लाओ और उसे इसमें गाड़ दो। अब, जब तुम्हें काम हो तब उससे काम करा लेना और जब कोई काम न हो तब उससे कहना कि इस बांस पर चढ़ो और उतरो, जब तक मैं आवाज न दूँ तब तक न आना। अथवा एक हजार बार गिनकर चढ़ो और उतरो, एक भी कम-ज्यादा नहीं होना चाहिए। इत्यादि-इत्यादि, परन्तु उसे कभी भी खाली मत छोड़ना, खाली छोड़ोगे तो वह तुम्हें खा जाएगा।”

किसान ने ऐसा ही किया और सुखी हो गया।

किन्तु अब हमारी बात है। हमारे पास भी एक उत्कृष्ट कार्यकर्ता है – हमारा मन। हम उससे बहुत काम ले सकते हैं, किन्तु लेना आना चाहिए। हमें उससे अच्छे काम कराने होंगे और येन-केन प्रकारेण उसे व्यस्त भी अवश्य रखना होगा, बिल्कुल भी खाली नहीं छोड़ना होगा, अन्यथा वह हमें खा भी जाएगा – यह सच है। लोकोक्ति में भी जो ऐसा कहा जाता है कि खाली दिमाग शैतान का घर है, वह बहुत ही अनुभव की और अत्यंत सारगर्भित बात है, हमें इसे गम्भीरता से लेना चाहिए। यदि कदाचित् हमारे पास कोई बहुत अच्छे प्रयोजनभूत कार्य न हों तो भी हमें उसे किसी-न-किसी छोटे-मोटे कलात्मक कार्यों में ही उसको लगा देना चाहिए, पर इसे व्यस्त अवश्य ही रखना चाहिए। जो व्यस्त है वही स्वस्थ है। हमारे पूर्वजों ने मन को व्यस्त रखने के लिए ही नानाविध शास्त्रों एवं कलाओं का प्रणयन किया है, उन्हें अप्रयोजनभूत नहीं समझना चाहिए।

मनमानी मत करो, जिनवाणी की सुनो

-प्रो. वीरसागर जैन

प्राचीन काल की बात है। एक आदमी कहीं दूर जा रहा था। मार्ग में थकान दूर करने के लिए वह एक वृक्ष की छाया में रुका। संयोग से वह वृक्ष एक कल्पवृक्ष था। शीघ्र ही उसकी थकान उतर गई। वह बहुत प्रसन्न हो गया और सोचने लगा- काश, एक गिलास पानी भी मिल जाता। तत्काल पानी सामने हाजिर हो गया।

पानी पीते हुए सोचने लगा- काश, खाने के लिए एक लड्डू भी साथ होता। अब लड्डू भी प्लेट में उपस्थित हो गया। उसने लड्डू खाकर पानी पी लिया, परन्तु सोचने लगा कि सुबह से भूखा हूँ, एक लड्डू से क्या होता है, पूरा भोजन ही मिलता तो तृप्ति होती।

अब भोजन की थाली सजकर सामने आ गई। उसने पेट भरकर भोजन कर लिया। भोजन करके सोचा- काश, यहाँ एक बिस्तर भी लगा होता तो मैं जरा देर लेट भी जाता, भोजन के तुरंत बाद मुझसे चला नहीं जाता है। अब बिस्तर भी लग गया और वह उस बिस्तर पर लेट गया।

लेटने के बाद वह सोचता है- अरे, यह क्या हो रहा है? मैंने सोचा- पानी, तो पानी हाजिर हो गया, मैंने सोचा- लड्डू, तो लड्डू हाजिर हो गया, मैंने सोचा- भोजन, तो भोजन हाजिर हो गया, मैंने सोचा- बिस्तर, तो बिस्तर हाजिर हो गया, यहाँ कहीं कोई भूत तो नहीं है?

इतने में ही एक भूत प्रकट हो गया। उसने सोचा- अरे, यह तो सचमुच भूत ही है, कहीं मुझे खा तो नहीं जाएगा। अब भूत उसे खा भी गया।

कहानी का तात्पर्य यही है कि जो मन के पीछे चलेगा, मनमानी करेगा, वह नष्ट हो जाएगा और जो जिनवाणी की सुनेगा वह तर जाएगा।

“मनः एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।”

सदानन्द नगर की एक्सक्लूसिव रिपोर्ट

-प्रो. वीरसागर जैन

मैं एक पत्रकार हूँ। मुझे एक अद्भुत समाचार मिला है कि इसी पृथ्वी पर कहीं अत्यंत दूर सदानंद नाम का एक ऐसा नगर है जो 'यथा नाम तथा गुण' है। वहां सदा सभी को सभी प्रकार का आनंद उपलब्ध रहता है। कभी किसी को कोई कष्ट नहीं होता। वहां कभी कोई रोग, महामारी, दुर्भिक्ष आदि तो दूर, सर्दी, गर्मी, वर्षा की हीनाधिकता के भी कोई कष्ट नहीं होते; सदा ही सुरम्य वातावरण बना रहता है। समाज में भी छुआछूत, दहेज़, चोरी, बलात्कार, बेरोजगारी आदि किसी भी तरह की कोई समस्या नहीं पाई जाती। परिवारों में भी कहीं कोई कलह नहीं होता, सब लोग सदा सबके अनुकूल ही रहते हैं। धन दौलत की दृष्टि से तो सर्व प्रकार की सम्पन्नता है ही।

अतः मैं कैसे भी बहुत कोशिश करके अपना माइक, कैमरा आदि लेकर इस नगर की एक एक्सक्लूसिव रिपोर्ट तैयार करने के लिए वहां पहुँच गया। वहां जाकर मैंने देखा कि वास्तव में ही वहां सर्व प्रकार का आनन्द है, कहीं किसी को कोई कष्ट नहीं है। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने ऐसा नगर आज तक देखना तो दूर, सुना भी नहीं था। मुझे यहां बहुत अच्छा लग रहा था।

किन्तु यह क्या, यहाँ के लोग तो मुझे जैसे शांत और प्रसन्न होने चाहिए थे, वैसे नहीं दिखाये दे रहे हैं, अपितु बहुत ही अशांत और परेशान-से दिखाए दे रहे हैं। वे सब न जाने किस समस्या में उलझे हुए भागदौड़ में ही लगे हुए थे, उन्हें मुझसे बात करने तक की फुर्सत नहीं थी।

पर मैं तो पत्रकार था, किसी तरह कुछ लोगों को बात करने को तैयार कर लिया। एक व्यक्ति से मैंने पूछा- "महाशय, आप क्या करते हैं? जरा कुछ अपने बारे में बताइये न!"

वे मुझे अपने एक भव्य कार्यालय में ले गए और अनेक साथियों के साथ सभागार में एकत्रित हो गए। फिर एक जन बोले- "देखिये पत्रकारजी, हम सभी **काक-वर्ण-निवारण-समिति** के सदस्य हैं, मैं अध्यक्ष हूँ और मेरे साथ ये सभी उपाध्यक्ष आदि अन्य पदाधिकारी एवं सदस्यगण हैं, हम कुल मिलाकर 80 लोग हैं और हमने आज से 50 वर्ष पहले अपनी इस काक-वर्ण-निवारण-समिति का गठन किया था। हमारी समिति का उद्देश्य है - कौए का रंग परिवर्तन करना। हम सभी चाहते हैं कि कौए का रंग अत्यंत उज्ज्वल धवल सफ़ेद होना चाहिए, काला होना ठीक नहीं है। हम सभी सदस्य पिछले 50 वर्षों से अनेक अनेक प्रयोगों के द्वारा अपने उद्देश्य की प्राप्ति में जुटे हुए हैं। हमने लाखों लीटर दूध से एक-एक कौए को रात-दिन दूध में रख-रख कर धोया है, अच्छी क्वालिटी के सफ़ेद पेंट से भी पोता है, तथा इसी प्रकार के और भी अनेक प्रयोग किये हैं। इस कार्य में अब तक 8000 करोड़ रुपये का बजट खर्च हो चुका है जिसे अगले वित्तीय वर्ष से और भी बढ़ाया जा रहा है। यद्यपि हमको अभी तक

कोई सफलता नहीं मिली है , परन्तु हमारे सभी साथी प्राण पण से जुटे हुए हैं , उन्हें अपने खाने-पीने, सोने तक की कोई चिंता नहीं है, वे रात-दिन निष्ठापूर्वक अथक परिश्रम कर रहे हैं। हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि हम एक दिन अपने उद्देश्य की प्राप्ति करने में अवश्य सफल होंगे।"

मैं इनकी बातें सुनकर स्तब्ध रह गया। सोचने लगा - ये कैसे लोग हैं, सदानंद नगर का सब सुख पास में होते हुए भी व्यर्थ ही इतने दुखी, अशांत, परेशान हो रहे हैं। मैंने उन्हें समझाना भी चाहा कि आप लोग क्यों व्यर्थ ही परेशान हो रहे हो, मस्त रहा करो, कौआ तो ऐसा ही होता है, होता था और होता रहेगा, यह उसका स्वभाव है ,इसे बदला नहीं जा सकता, आदि; पर वे मेरी कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थे, अतः मैं वहां से निकलकर एक दूसरे जनसमूह से बात करके स्थिति समझने की कोशिश करने लगा - "बंधुओ ! मैं पत्रकार हूँ और भारतवर्ष की राजधानी नई दिल्ली से आया हूँ, आप लोग किस भाग-दौड़ में लगे हैं , जरा कुछ अपने बारे में बताइये न !"

उन्होंने बताया - "हम सभी नीम-रस-परिवर्तन-समिति के सदस्य हैं। हमारी संस्था बहुत पुरानी है, इसकी स्थापना आज से 99 वर्ष पहले हुई थी। अगले वर्ष हम बड़े ही व्यापक स्तर पर इस संस्था का शताब्दी समारोह मनाने जा रहे हैं। हमारी संस्था का उद्देश्य है- नीम का रस परिवर्तन करना। नीम एक अत्यंत उपयोगी वृक्ष है, परन्तु कड़ुआ होने के कारण सभी लोग उसका लाभ नहीं उठा पाते हैं, अतः हमारी संस्था समस्त जनता के कल्याण के लिए उसे कड़ुए के स्थान पर मीठा बनाने के लिए कृत-संकल्प है और एतदर्थ अनेक योजनाएँ चला रही है। हमारी संस्था ने एक विशाल भूखंड पर नीम का बाग लगाया है और उसमें सैकड़ों वैज्ञानिकों को नियुक्त किया है। हम सब लोग खाना पीना सोना सब भूलकर, तन-मन-धन से इस कार्य में रात-दिन जुटे हुए हैं। हमने अनेक महान प्रयोग भी किये हैं। जैसे - हमने नीम को शुरू से ही पानी के बजाय चीनी से सींचने का प्रयोग भी किया है। यद्यपि अभी तक इस कार्य में हमें कोई सफलता नहीं मिली है, पर हमारे कार्यकर्त्ता हिम्मत हारने वाले नहीं हैं। हमने आम जनता के कल्याण का महान कार्य अपने हाथ में लिया है और उसे करके रहेंगे।"

"अरे, ये तो यहाँ भी वैसा ही हाल है, ये लोग भी बड़े मूर्ख लग रहे हैं, व्यर्थ ही दुखी हो रहे हैं, इनको कौन कैसे समझा सकता है ?" - मैं सोचने लगा और आगे चल दिया।

आगे जाकर मैं एक अन्य दल से बात करने की कोशिश करने लगा - "मित्रो ! मैं पत्रकार हूँ, मुझे जरा अपने बारे में कुछ बताइए न !"

वे बोले - "हम सब सूर्य-दिशा-परिवर्तन-समिति के सम्मानित सदस्य हैं। हम सब निःस्वार्थ भाव से पूरे तन-मन-धन से रात-दिन जुटकर अपनी संस्था की सेवा करते हैं। हमारी संस्था एक बड़े ही महान उद्देश्य से स्थापित की गई है। इसका उद्देश्य है - सूर्योदय की दिशा परिवर्तन करना। दरअसल बात यह है कि सूर्य प्रतिदिन एक पूर्व ही दिशा से उदित होता है और यह बात न्यायोचित नहीं है। इससे अन्य दिशाओं का अनादर भी होता है और उन दिशाओं में रहने वालों को भी सूर्य का समुचित लाभ नहीं मिल पाता है। हम चाहते हैं कि सूर्य क्रम-क्रम से एक-एक हफ्ते के लिए सभी दिशाओं में उदित हुआ करे, ताकि सबका समान रूप से भला हो। हमारी संस्था ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अब तक हजारों विमान बनाकर आकाश की ओर भी भेजे हैं, जिनमें हमारी धनहानि ही नहीं, जनहानि भी बहुत हुई है, परन्तु फिर भी हमारे एक भी कार्यकर्त्ता का उत्साह

शिथिल नहीं हुआ है, सब लोग अपना सर्वस्व समर्पित करके भी, जान देकर भी इस उद्देश्य की प्राप्ति करने हेतु कृत-संकल्प हैं। हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि एक-न-एक दिन इस कार्य में सफलता अवश्य मिलेगी। "

मेरे मुँह से निकल पड़ा- हे भगवान ! और जैसे-तैसे अपने को संभालकर मैं आगे बढ़ा। कुछ देर बाद सोचा - एक और दल से बात करके देखा जाए - "मान्यवर, आप लोग क्या करते हैं, जरा कुछ अपने विषय में बताइये न ?"

पर उनकी कहानी भी ऐसी ही निकली - "हम सब लोह-जल-तारण-समिति के सदस्य हैं। हमने अपना पूरा जीवन 24 x 7 अपनी समिति के लिए समर्पित कर रखा है। हमारी समिति का पावन उद्देश्य है - लोहे को भी लकड़ी की तरह पानी में तिराना। हमारा सोचना है कि जब लकड़ी पानी में तैर सकती है तो लोहा क्यों नहीं ? उसे भी तैरना चाहिए। पक्षपात क्यों ? हम यह पक्षपात सहन नहीं करेंगे। और इसीलिए हमारी इस समिति की स्थापना हमारे पूर्वजों ने की है। हमारी समिति अत्यंत प्राचीन है और अब तक अनेक कीर्तिमान स्थापित कर चुकी है, बड़े-बड़े पुरस्कार प्राप्त कर चुकी है, वर्ल्ड रिकॉर्ड बना चुकी है। ये देखिये, ये जो ऊपर लगे हैं, ये सब हमारे पूर्व पदाधिकारियों के चित्र हैं। इन्होंने समिति के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपने प्राणों तक को न्योछावर कर दिया था। भारत सरकार ने इन्हें मरणोपरांत स्वर्णपदक आदि प्रदान करके सम्मानित किया है। हमारे नए युवा कार्यकर्ता भी अपने पूर्वजों के पद-चिह्नों पर चलते हुए समिति के उद्देश्य को पूर्ण करने में जी जान से जुटे हुए हैं। उन्हें अपने तन-मन, घर-परिवार आदि की कोई परवाह नहीं है। वे लोहे को पानी में तिराने के लिए गहरे पानी में भी कूदने का जोखिम उठा रहे हैं। यद्यपि इसमें हमारे अनेक कार्यकर्ता शहीद हो चुके हैं और हमें अपने उद्देश्य में भी अभी तक कोई खास सफलता भी नहीं मिली है, लेकिन हम निराश नहीं हुए हैं। हम जब तक अपने उद्देश्य की प्राप्ति नहीं कर लेंगे, तब तक चैन की साँस नहीं लेंगे। इंकलाब ज़िंदाबाद !"

मैं सोचने लगा- हे भगवान, इतनी बड़ी-बड़ी बातें और वे भी बिलकुल व्यर्थ ! सब सुख होते हुए भी महादुखी ! दुःख का कारण हो और व्यक्ति दुखी हो तब तो कोई बात भी है, पर सर्व प्रकार का आनंद होते हुए भी, सदानंद नगर में रहते हुए भी जो इतना अशांत हो, उसका क्या किया जाये ? कदाचित् कोई समझाने वाला मिले तो भी जो न सुने-समझे, उसका क्या जाये ? उसे सुखी कौन करे ?

और मैं भारी मन से दिल्ली लौट आया।

परामर्शदाता कैसा हो

-प्रो. वीरसागर जैन

एक ब्राह्मण था | वह बहुत संतोषी स्वभाव का था, किन्तु उसकी पत्नी उसे बारम्बार उलाहना देती रहती थी कि कहीं से कुछ धन लेकर आओ |

पत्नी के उलाहनों से तंग आकर वह एक दिन जंगल चला गया | सोचा, रोज-रोज के ताने सुनने से अच्छा है कि मर ही जाऊं |

जंगल में उसे सचमुच ही एक शेर मिल गया | शेर उसे मारने के लिए झपटने ही वाला था कि समीप में पेड़ पर एक हंस पक्षी बैठा था, बोला-

“रुको रुको मृगराज ! यह तुम क्या रहे हो ? जानते नहीं हो कि यह कौन है ? अरे, ये तो ब्राह्मण देवता हैं, जिनके दर्शन ही महाभाग्य से कई जन्मों के पुण्य फलित हों तब होते हैं | यदि तुम इनको मारोगे तो तुम्हें ब्रह्महत्या का महापाप लगेगा और घोर नरकों में जाना पड़ेगा | अरे देखो, यदि तुम्हें भूख लगी हो तो भी जंगल में जानवरों की कमी नहीं है, परन्तु इनको मत मारो | इनको तो बल्कि कुछ अर्घ्य चढ़ाकर प्रणाम करो, ताकि तुम तिर्यच योनि से पार हो जाओ |”

शेर को हंस की सलाह एकदम उचित लगी | उसने ब्राह्मण के चरणों में कुछ गजमोती चढ़ाये और साष्टांग प्रणाम निवेदन कर दिया | ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हो गया | उसने शेर को आशीर्वाद दिया और गजमोती लेकर अपने घर लौट गया |

देखो आश्चर्य, जिस दुःख की भट्टी से निकलकर वह बाहर आया था, कुछ अनुकूलता मिलते ही फिर उसी में लौट गया |

घर पहुँचने के बाद कुछ दिन तक तो बहुत अच्छा रहा, अच्छे-अच्छे पकवान बनने लगे, नये-नये वस्त्र आने लगे, आदि; किन्तु थोड़े ही दिन में सारे गजमोती खर्च हो गये और घर की स्थिति पुनः वैसी ही हो गई |

पत्नी बोली- फिर से जाओ और कुछ और गजमोती लेकर आओ |

ब्राह्मण पुनः जंगल में गया | शेर आज भी उसी स्थान पर बैठा हुआ था | उसने दूर से ही अपने ब्राह्मण देवता को आते हुए देख लिया | वह भक्तिपूर्वक उठकर बोला- “हे मेरे प्रातःस्मरणीय ब्राह्मण देवता ! आओ आओ पधारो पधारो ! धन्य था वह दिन जब आपके प्रथम बार दर्शन हुए थे और धन्य है आज का भी दिन जो आपके पुनः दर्शन हो रहे हैं | आओ, विराजो, आपकी पूजा करूंगा | उस दिन तो मेरे पास बहुत ही कम गजमोती थे, किन्तु आज मैंने आपके लिए बहुत सारे गजमोती इकट्ठे करके रखे हैं | मैं उस दिन से प्रतिदिन आपको परोक्ष प्रणाम करके पूजता रहता हूँ | विराजो गुरुदेव, यहाँ विराजो |”

किन्तु आज स्थिति में एक विशेष अंतर था। पिछली बार जहाँ पेड़ पर एक हंस पक्षी बैठा हुआ था, वहाँ आज हंस के स्थान पर एक कौआ बैठा हुआ था। शेर के इस आचरण को देखकर वह उससे बोला- “अबे ओए ! ये क्या कर रहा है ? क्या हो गया है तुझे ?”

शेर ने हंस से जो उत्तम शिक्षा प्राप्त की थी, वह सब यथावत् सुना दी कि ये ब्राह्मण देवता हैं, जिनके दर्शन ही महाभाग्य से कई जन्मों के पुण्य फलित हों तब होते हैं। यदि इनको मारेंगे तो ब्रह्महत्या का महापाप लगेगा और घोर नरकों में जाना पड़ेगा और यदि इनको कुछ अर्घ्य चढ़ाकर प्रणाम करेंगे तो तिर्यच योनि से पार हो जाएंगे।

कौआ बोला- “अरे, तुझे तो उसने मूर्ख बना दिया है। ब्राह्मण, शूद्र आदि वास्तव में कुछ नहीं होता। सब एक ही हड्डी, चमड़ी, खून आदि के बने होते हैं। किसी में कोई अंतर नहीं होता। तू यदि ऐसी बातें मानेगा तो भूखा ही मर जाएगा। इसलिए यदि मेरा कहना माने तो हंस की बातों पर ध्यान मत दे और शीघ्र इसका काम तमाम कर दे।”

जिनके पास स्वयं का विवेक नहीं होता है, वे शीघ्र ही दूसरों की बातों में आकर भटक जाते हैं। शेर के साथ भी यही हुआ। वह कौए की बातों में आ गया। उसने ब्राह्मण का काम तमाम कर दिया। कौआ तो चाहता ही यही था कि यह ब्राह्मण को मार दे तो अंत में उसे भी कुछ थोड़ा-सा बचा-खुचा मांस खाने को मिल जाए।

कहानी का सन्देश यह है कि दुनिया में दो प्रकार के परामर्शदाता होते हैं। एक हंस जैसे और दूसरे कौए जैसे। हंस जैसे परामर्शदाता निःस्वार्थ होते हैं और सबका भला करते हैं, किन्तु कौए जैसे परामर्शदाता स्वार्थी होते हैं और सभी का बुरा करते हैं।

देखो, हंस ने शेर का भी भला किया, ब्राह्मण का भी भला किया, उसके परिवार का भी भला किया और स्वयं का भी पुण्यार्जन करके भला ही किया; किन्तु कौए ने शेर का भी बुरा किया, ब्राह्मण का भी बुरा किया, उसके परिवार का भी बुरा किया और स्वयं का भी पापबन्ध करके बुरा ही किया।

लोक में कौए जैसे परामर्शदाता तो गली-गली में मिलते हैं, परन्तु हंस जैसे परामर्शदाता अत्यंत दुर्लभ होते हैं। हमें कौए जैसे परामर्शदाताओं से बचना चाहिए और हंस जैसे परामर्शदाता की बात माननी चाहिए।

दोष देखने की आदत

-प्रो. वीरसागर जैन

एक बार एक आदमी घूमने निकला | वह एक उद्यान में पहुंचा | वहाँ उसने सर्वप्रथम एक कोयल को गाते हुए सुना | उसका मन प्रसन्न हो गया | उसके कानों में मिश्री घुल रही थी | उसने उसे जी भरकर सुना | किन्तु चलते समय उससे यही कहा कि काश, तू काली नहीं होती तो कितना अच्छा रहता |

इसके बाद वह आगे गया तो उसने एक गुलाब का पुष्प देखा | इतना सुन्दर पुष्प उसने जीवन में पहली बार देखा था | वह बहुत प्रसन्न हुआ | परन्तु चलते समय उसने उससे भी यही कहा कि काश, तुझमें कांटे नहीं होते तो कितना अच्छा रहता |

इसके बाद वह एक समुद्र के किनारे पहुँच गया | इतना विशाल एवं शान्त समुद्र भी उसने जीवन में पहली बार देखा था | वह उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ | उसके किनारों पर उसने खूब घंटों तक जलक्रीडा की | परन्तु चलते समय उसने उससे भी यही कहा कि काश, तू खारा नहीं होता तो कितना अच्छा रहता |

अब रात्रि हो चली थी | वह अपने घर की ओर लौट चला | संयोग से उस दिन शरद पूर्णिमा थी | चन्द्रमा अपनी सोलह कलाओं के साथ खिला हुआ था | अपने सुधाकर नाम को ही चरितार्थ किये हुए था | उसे उसकी शीतल चांदनी भी आज बहुत ही सुखद प्रतीत हो रही थी | उसने उसका बहुत आनन्द लिया | परन्तु चलते समय उससे भी यही कहा कि काश, तुझमें कलंक नहीं होता तो कितना अच्छा रहता |

जब वह अपने घर की ओर लौट रहा था तब उसे एक साथ चार लोगों ने पुकारा- “अरे ओ मनुष्य ! सृष्टि की सुन्दरतम रचना ! तू कितना अच्छा है रे, तू चौरासी लाख योनियों में सबसे अच्छा है रे, परन्तु काश, तुझमें दोष देखने की आदत नहीं होती तो कितना अच्छा रहता | तू साक्षात् भगवान ही होता |”

माँ सरस्वती से प्रार्थना

हम आठ भाई-बहिन हैं | बचपन में मैं जब भी कोई अच्छी वस्तु अपने किसी भी भाई या बहिन के पास देखता था तो अपनी माँ से इस बात पर बहुत झगड़ा करता था कि मेरे अमुक भाई/बहिन के पास अमुक खिलौना, वस्त्र, मिष्ठान्न आदि अच्छी वस्तु है जो मेरे पास नहीं है और वह मेरे पास भी अवश्य ही होनी चाहिए | इससे मेरी माँ मुझे भी वह अच्छी वस्तु दे देती थी | मैं किसी भाई/बहिन के पास किस वस्तु की कमी है या बुरी वस्तु है, यह बिलकुल नहीं देखता था |

उसी प्रकार हे सरस्वती माता ! तुम सर्व लोक की माता हो और लोक के सभी जीव मेरे भाई-बहिन हैं, अतः मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि उनके पास क्या कमी है, इससे मुझे कोई मतलब नहीं है, परन्तु उनके पास जिस-जिसके पास जो भी अच्छे-अच्छे गुण हों, वे सब मुझे भी प्रदान करो |

विश्व मूर्ति प्रतियोगिता

-प्रो. वीरसागर जैन

एक बार विश्व की सभी मूर्तियों की प्रतियोगिता रखी गई, यह जानने के लिए कि कौन-सी मूर्ति सर्वश्रेष्ठ है, विश्वशांति का सशक्त संदेश दे सकती है। सभी धर्म वाले अपनी-अपनी मूर्तियाँ लेकर आये। बहुत बड़ा निर्णायक मण्डल गठित हुआ। अनेक प्रकार से सभी मूर्तियों का खूब परीक्षण हुआ।

अन्त में केवल दो ही मूर्तियाँ फाइनल राउंड के लिए शेष बचीं- जैन एवं बौद्ध, क्योंकि ये दो ही मूर्तियाँ शांतमुद्रा-युक्त थीं। शेष सब मूर्तियाँ किसी-न-किसी कारण से बाहर हो गईं। किसी के पास अस्त्र-शस्त्र थे तो किसी के पास पत्नी-बच्चे। वे सब स्पष्टतया राग-द्वेष का संदेश दे रही थीं।

इसके बाद पुनः फाइनल निर्णय के लिए निर्णायक मण्डल की बैठक हुई। सभी सदस्यों में बहुत अधिक ऊहापोह हुई, पर समझ में ही नहीं आ रहा था कि इन दोनों में से भी कौन-सी मूर्ति श्रेष्ठ मानी जाए, क्योंकि दोनों ही मूर्तियाँ शांतमुद्रा-युक्त थीं, देखने पर राग-द्वेषादि सर्व विकारों से रहित लगती थीं।

किन्तु आखिरकार, निर्णायक मण्डल के एक सदस्य ने कहा कि मेरी समझ में आ गया है। बौद्ध मूर्ति आशीर्वाद दे रही है और आशीर्वाद देना भी एक प्रकार से अहंकार का प्रतीक है। आशीर्वाद वही देता है जो स्वयं को बड़ा और दूसरों को छोटा मानता हो। वह सबको समानता का संदेश नहीं दे सकता। समानता का संदेश तो जैन मूर्ति ही दे रही है, क्योंकि वह आशीर्वाद भी नहीं दे रही है। साफ-साफ घोषित कर रही है कि सब समान हैं। यदि मैं भगवान हूँ तो तुम भी भगवान हो और एक भगवान दूसरे भगवान को आशीर्वाद नहीं दे सकता। समानता के बिना शान्ति असम्भव है।

सभी को बात जंच गई और सर्वश्रेष्ठ मूर्ति का ताज जैन मूर्ति को पहनाया गया। (‘ताज पहनाना’ यहाँ मुहावरा है। ताज पहनाया गया अर्थात् श्रेय दिया गया।)

समस्या की जड़

-प्रो. वीरसागर जैन

एक बार जिनेश का स्वास्थ्य खराब हो गया | वह डॉक्टर के पास गया – “ डॉक्टर साहब ! मुझे तेज बुखार आ गया है, कृपया शीघ्र दवाई दीजिए |”

बुखार चेक करने के बाद डॉक्टर बोला- “अरे, यह तो मलेरिया है | जैन साहब ! एक बात बताओ, आप हमेशा कहते हो कि मच्छर नहीं मारना चाहिए, अब आज बताओ कि क्या करें ? तुम्हें मर जाने दें या मच्छरों को मारें ?”

जिनेश – “देखो डॉक्टर साहब ! मैं तो भगवान महावीर का कहना मानता हूँ, मुझे तो भगवान महावीर ने कहा था कि मच्छर मत मारो, अतः मैं उतना ही जानता हूँ, आपसे अधिक तर्क नहीं कर सकता, आपको अधिक बात करनी हो तो भगवान महावीर से ही करनी पड़ेगी |”

भगवान महावीर को फोन लगाया गया | लग भी गया | बात भी होने लगी -

भगवान महावीर- “कहो जिनेश ! कैसे फोन मिलाया ?”

जिनेश – “प्रणाम प्रभो ! जरा ये हमारे डॉक्टर साहब आपसे बात करना चाहते हैं |”

डॉक्टर ने भगवान महावीर से बात की | उनसे अपने मन का वही प्रश्न पूछा कि क्या करें, यदि मच्छर मारते हैं तो आपके अनुसार हिंसा होती है और यदि नहीं मारते हैं तो बुखार के कारण मनुष्य मरते हैं ? आखिर क्या किया जाए ?

भगवान महावीर का उत्तर ध्यान देने योग्य है- “आप लोग मेरी पूरी बात नहीं सुनते हैं, अधूरी ही सुनते हैं, इसलिए समस्या होती है | अरे भाई ! मैंने यह भी तो कहा था कि अल्पारम्भपरिग्रह रखो, घर में कूड़ा कबाड़ इकट्ठा मत करो, रात्रि में भोजन मत करो, घर में जूठन मत फैलाओ, अनछुना पुराना पानी कूलर आदि में भरकर मत छोड़ो | यदि तुम मेरी वह सब पूरी बात मानते तो न घर में मच्छर पैदा होते और न ही तुमको बुखार आता |”

डॉक्टर को उच्च कोटि का मार्गदर्शन मिल गया, समस्या की जड़ ही समझ में आ गई |

डॉक्टर के प्रयास एवं परामर्श से अब जिनेश ही नहीं, पूरा नगर स्वस्थ रहता है |

कटोरे में कचरा है

-प्रो. वीरसागर जैन

किसी नगर में एक महात्माजी पधारे | नगर के सभी लोग उनका उपदेश सुनने आये | एक दिन वहाँ का राजा भी आया | महात्माजी का उपदेश चल रहा था | उन्होंने राजा को अलग से महत्त्व नहीं दिया | राजा अप्रसन्न होकर महात्माजी से बोला- “मैं यहाँ का राजा हूँ, आपको मुझे स्पेशल उपदेश देना चाहिए था |”

महात्माजी- “अच्छा, तुम्हें स्पेशल उपदेश चाहिए ? तो सुनो हम तुम्हें कल तुम्हारे राजमहल में आकर ही स्पेशल उपदेश देंगे | और हाँ, हो सके तो कल आहार भी वहीं करेंगे |”

राजा प्रसन्न होकर चला गया | दूसरे दिन प्रातःकाल महात्माजी पहुँच गये- “सुनो राजन, आज हम आपको स्पेशल उपदेश देंगे, किन्तु पहले आहार कर लेते हैं |”

“बहुत अच्छा गुरुदेव, आहार तैयार है, खीर बनाई है, कृपया ग्रहण करें |”

महात्माजी ने अपना कटोरा आगे कर दिया | राजा उसमें खीर डालने लगा, किन्तु एकाएक रुक गया | बोला- “महाराज, आपके कटोरे में तो कचरा पड़ा है, मैं इसमें खीर कैसे डाल सकता हूँ ? खीर और खराब हो जाएगी | अतः पहले कटोरे में से कंकर बाहर निकालिए, तभी मैं खीर परोसूँगा |”

अब महात्माजी बोले- “कुछ समय में आया राजन ! जिसप्रकार तुम मलिन कटोरे में अपनी खीर नहीं परोस सकते, उसीप्रकार मैं भी तुम्हारे अहंकार आदि से मलिन चित्त में अपना उपदेश नहीं प्रवेश करा सकता | पहले तुम उसे बाहर निकालकर फेंको, तभी तुम्हें उपदेश दिया जा सकेगा |”

राजा की शुभ घड़ी आ गई थी | उसने सर्व अहंकार आदि का त्याग कर दिया | उसका जीवन महात्माजी के स्पेशल उपदेश से धन्य हो गया |

वैराग्य

-प्रो. वीरसागर जैन

“सुनो प्रिये, मुझे संसार से वैराग्य हो गया है और मैं मुनि-दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। आशा है तुम मुझे सहर्ष अनुमति दे दोगी।” – पति ने पत्नी से कहा।

पत्नी बोली- “स्वामी, मैं तो स्वयं ही कब से दीक्षा ग्रहण करना चाह रही थी। वह तो बार-बार आपका ही विचार रोक देता था कि और थोड़ा रुक जाती हूँ, जितना हो सके आपकी सेवा कर लेती हूँ। किन्तु अब जब आप ही जा रहे हैं तो मुझे यहाँ रहकर क्या करना? मैं भी चली दीक्षा ग्रहण करने।”

पति-पत्नी दोनों दीक्षा ग्रहण करने निकल पड़े। आगे-आगे पति चल रहा था, पीछे-पीछे पत्नी। मार्ग में एक स्थान पर स्वर्ण पड़ा हुआ था। पति ने सोचा- पीछे पत्नी आ रही है, स्वर्ण देखेगी तो उसे राग उत्पन्न हो जाएगा। और उसने उस स्वर्ण पर अपने पैर से चुपचाप थोड़ी-सी रेत डाल दी। स्वर्ण को ढंक दिया, ताकि पत्नी को वह दिखाई न दे।

किन्तु पति की यह क्रिया पत्नी को दिखाई दे गई। बोली- “क्यों मिट्टी पर मिट्टी डाल रहे हो? लगता है तुम्हें अभी सच्चा वैराग्य नहीं हुआ।”

सच है, जब तक स्वर्ण और रेत में अंतर भासित होता है, तब तक वैराग्य कहाँ?

पैसे आपके पोतों से ले लेंगे

एक होटल के बाहर लिखा था कि आप हमारे यहाँ छककर भोजन कीजिए, पैसे देने की कोई जरूरत नहीं है, पैसे हम आपके पोतों से ले लेंगे।

एक आदमी गया। उसने छककर भोजन किया। किन्तु लौटते समय उसे 1000 रुपये का बिल भुगतान करने के लिए दिया गया। वह बोला- “आपने तो कहा था कि पैसे देने की कोई जरूरत नहीं है, पैसे हम आपके पोतों से ले लेंगे।”

वेटर बोला- “वह तो ठीक ही है, किन्तु यह तो आपके दादाजी भोजन करके गये थे, उसका बिल है।”

तात्पर्य यही है कि यहाँ कुछ भी फ्री नहीं है, कर्म सब वसूल करता है।

मोह की महिमा

एक सूअर था | वह गंदे नाले में लोट रहा था | ऊपर से एक देवविमान गुजर रहा था | देवता को उस पर दया आ गई | नीचे उतरकर देवता ने सूअर से कहा- ये क्या गन्दे नाले में पड़े हो, हमारे साथ स्वर्ग चलो | सूअर बोला- अरे वाह, धन्य भाग्य मेरे, कब से स्वर्ग जाने की भावना कर रहा हूँ, कितने अनुष्ठान इसके लिए किये हैं, पर आज नम्बर आया है | चलता हूँ, अवश्य चलता हूँ, बस चलने से पूर्व एक बार और अंतिम बार इसमें अच्छे से लोट लेना चाहता हूँ |

देवता- ठीक है, जैसी तुम्हारी इच्छा, पर शीघ्रता करो |

सूअर- बस, अभी आता हूँ |

सूअर ने एक बार नहीं, दस बार लोट-पलोट लगा ली उस गन्दे नाले में, पर बाहर नहीं आया | देवता ने ही आवाज लगाई | आओ भैया, जल्दी आओ |

सूअर- आया प्रभु ! बस एक बार और |

एक बार और एक बार और करते करते बहुत समय बीत गया, पर वह नहीं आया | देवता बोला- देखो भैया, यदि तुम्हें नहीं चलना हो तो कोई बात नहीं है, मना कर दो, मैं जाता हूँ | मैं तो तुम्हारे भले के लिए ही रुका था |

सूअर- मुझे चलना है प्रभो, बस एक प्रश्न का उत्तर दे दो |

देवता- निसंकोच पूछो भैया |

सूअर- वो जहाँ स्वर्ग में तुम मुझे ले जा रहे हो वहाँ ऐसा इस नाले जैसा स्थान तो है न ?

देवता- कैसी बात करते हो, वहाँ ऐसी बदबूदार जगह कोई नहीं है | वहाँ तो सब दिव्य ही दिव्य है |

सूअर- तो फिर आप जाओ प्रभो, मैं यहीं अच्छा हूँ |

यही दशा मोही जीवों की हो रही है | वे कदाचित् गुरु-उपदेश से विषय-कषाय को हेय और धर्म/मोक्ष/वीतरागता को उत्तम कहते हैं; परन्तु परमार्थ से ऐसा मानते नहीं हैं | मानते तो विषय-कषाय को ही उपादेय हैं, धर्म/मोक्ष/वीतरागता से तो बल्कि द्वेष करते हैं |

अर्थाचार

-प्रो. वीरसागर जैन

राजस्थान के रेतीले रास्ते पर एक सैनिक चल रहा था | वह छुट्टी बिताने घर आया था | गाँव तक जाने का कोई साधन नहीं था, पैदल ही जाना होता था |

किन्तु इतने में ही एक ऊंट गाड़ी आ गई, जो उसके गाँव की तरफ ही जा रही थी | सैनिक ने गाड़ी वाले से अनुरोध किया- भैया, मुझे भी बिठा लो न !

गाड़ीवान- बिठा तो लेता भई, पर देखते नहीं हो गाड़ी ऊपर तक लबालब भरी है, बैठने की कहीं कोई जगह ही नहीं है |

सैनिक- मैं सब बैठ जाऊंगा, तुम तो हाँ करो बस, ऊपर चढ़कर बैठ जाऊंगा |

गाड़ीवान- बैठ जाओ, पर नाड़ी को कसकर पकड़ लेना, नहीं तो गिर जाओगे, फिर मुझे मत कहना, रास्ता भी ऊबड़-खाबड़ है |

सैनिक उछलकर गाड़ी में ऊपर जाकर बैठ गया, किन्तु थोड़ी दूर चलते ही नीचे गिर गया | गाड़ीवान ने गाड़ी रोककर उसे उठाया- अरे, कैसे गिर गये ? कहा था न कि कसकर नाड़ी पकड़ लेना, नहीं तो गिर जाओगे |

‘नाड़ी तो मैंने अभी तक कसकर पकड़ रखी है, देख लो |’ सैनिक ने अपने पायजामे की नाड़ी दिखाते हुए कहा, जो उसने अभी भी पकड़ रखी थी |

अरे भले आदमी, ये पजामे की नाड़ी नहीं, गाड़ी की नाड़ी पकड़नी थी, जिससे सामान बंधा हुआ है | वो पकड़ते तो कभी नहीं गिरते |

इसी प्रकार हमने ‘धर्म’ के नाम पर कुछ और ही पकड़ रखा है | दुनिया में ‘धर्म’ के नाम पर बहुत कुछ चलता है, शब्दकोशों में भी ‘धर्म’ शब्द के अनेक अर्थ कर रखे हैं, परन्तु ‘धर्म’ शब्द का असली अर्थ तो शुद्धोपयोग है, (धर्मः शुद्धोपयोगः स्यात् -पंचाध्यायी), यदि उसे पकड़ें तो कभी भी संसार-सागर में न गिरें |

अमांगलिक पुरुष

-प्रो. वीरसागर जैन

किसी नगर में एक बहुत गरीब व्यक्ति रहता था, किन्तु वह गरीब होने के साथ-साथ अभागा भी था। लोग उसे अमांगलिक मानते थे। कहते थे कि यदि प्रातःकाल इसका मुख देख लो तो भोजन ही नहीं मिलता।

लोगों ने उसकी शिकायत राजा से भी कर दी।

राजा ने उसकी परीक्षा करने के लिए उसे एक दिन अपने पास रख लिया और प्रातःकाल होने पर सर्वप्रथम स्वयं ही उसके मुख का दर्शन किया।

इसके बाद जब राजा भोजन करने बैठा तो संयोग से एक ऐसा आपातकालीन समाचार आ गया कि राजा को शीघ्र थाली छोड़कर जाना पड़ा।

इससे राजा को विश्वास हो गया कि वह पुरुष सचमुच ही अमांगलिक है और राजा ने उसे फांसी पर चढ़ाने का आदेश दे दिया।

सैनिक जब उसे फांसी पर चढ़ाने के लिए ले जा रहे थे तो मार्ग में एक ज्ञानी पुरुष मिला। उसने करुणा करके उसे धैर्य बंधाया और कुछ उपाय भी समझाया।

फांसी पर चढ़ाने से पूर्व परम्परानुसार उससे उसकी अंतिम इच्छा पूछी गई। उसने राजा से मिलने की इच्छा व्यक्त की। राजा को बुलाया गया। उसने राजा से कहा- “हे राजन ! आज प्रातःकाल आपने मेरा मुख देखा तो आपको भोजन नहीं मिला, परन्तु यह भी तो सोचिए कि मैंने भी तो आपका मुख देखा था, मुझे तो मृत्यु मिल रही है, फिर दुनिया अधिक अमांगलिक किसे कहेगी ? आपका सुयश कैसे होगा ?”

यह सुनकर राजा ने उसे फांसी पर चढ़ाने का आदेश निरस्त कर दिया।

भारतवर्ष के राजा

-प्रो. वीरसागर जैन

एक बार ईरान के एक राजा को यह जिज्ञासा हुई कि उनके देश के राजा अल्पायु क्यों होते हैं, जबकि भारतवर्ष के राजा तो बहुत अधिक वृद्ध हो जाते हैं, सौ-सौ वर्ष से भी अधिक जीते हैं। क्या कारण है इसका ? उसने इस विषय पर गहरा अनुसन्धान करना प्रारम्भ कर दिया।

उसने बहुत लोगों से इस विषय में पूछा, बड़े-बड़े ज्ञानियों से पूछा, पर कुछ भी समाधान हुआ। सब लोग यही कहकर छोड़ देते थे कि इसमें क्या है, जिसकी जितनी आयु होती है, वह उतना ही जीता है, इसमें कोई कुछ नहीं कर सकता।

पर राजा को संतोष नहीं हुआ। वह इस कार्य में लगा ही रहा।

एक दिन उसने अपने चार कुशल मंत्रियों को इस जिज्ञासा के समाधान हेतु भारतवर्ष भेजा और आदेश दिया कि जब तक इस प्रश्न का उत्तर न मिले तब तक यहाँ वापिस मत आना, वहीं रहना, चाहे कितना भी समय बीत जाए, हमने तुम्हारे रहने-खाने आदि की उत्तम व्यवस्था कर दी है।

चारों मंत्री भारतवर्ष आ गये, परन्तु यहाँ भी उनको सबसे वही उत्तर मिल रहा था कि आयु कर्म बलवान है, जिसकी जितनी आयु होती है, वह उतना ही जीता है, इसमें अन्य कुछ कारण नहीं है।

किन्तु ईरान के राजा को इस उत्तर से संतोष नहीं होता था। बहुत दिन बीत गये। चारों मंत्री यँ ही अपना समय व्यतीत कर रहे थे।

आखिरकार एक दिन उन्हें एक बहुत ही वृद्ध पुरुष मिला। उन्होंने उससे इस जटिल प्रश्न का उत्तर देने की प्रार्थना की। वह बोला- “पहले एक काम करो, तुम चारों नगर के बाहर पीपल का एक नया सुन्दर पेड़ है, उसके नीचे जाकर पन्द्रह दिन तक रोज लगातार ऐसा बोलो कि यह पेड़ जल्दी सूख जाए, यह पेड़ जल्दी सूख जाए। उसके बाद में यदि उत्तर न मिले तो मुझसे आकर मिलना।”

चारों मंत्रियों ने ऐसा ही किया और पन्द्रह दिन पूरे होने के बाद उस वृद्ध पुरुष से मिलने आ गये- “अब हमारे प्रश्न का उत्तर दीजिए।”

वृद्ध- “उत्तर नहीं मिला तुम्हें ?”

“नहीं।”

“क्या हुआ उस पेड़ का ?”

“सूख गया वह तो।”

“बस यही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है | तुम्हारे देश के राजा प्रजा को बहुत अधिक दुःख देते हैं, छोटी-छोटी बात पर या बिना वजह ही उसे क्रूरतम दंड देते हैं, इसकी आँखें निकाल लो, इसके अंग काट दो, इत्यादि, अतः वहाँ की प्रजा राजा को बहुत बदुआ देती है, वह जल्दी मर जाए -ऐसी कामना करती है, अतः तुम्हारा राजा जल्दी मर जाता है | किन्तु हमारे भारतवर्ष के राजा प्रजा को पुत्रवत् प्रेम करते हैं, स्वयं दुःख पा लेते हैं, पर प्रजा को दुःख नहीं होने देते, स्वयं रात्रि में जागते हैं ताकि उनकी प्रजा सुख से सो सके, अतः यहाँ की प्रजा सदैव राजा के चिरायु होने की कामना करती रहती है, अतः यहाँ के राजा दीर्घायु होते हैं |”

ईरान के राजा को उत्तर मिल गया | उसका सारा व्यवहार बदल गया | अब वह प्रजा का स्वामी नहीं, सेवक बन गया |

आगम और परमागम

-प्रो. वीरसागर जैन

दो मित्र थे- आगम और परमागम। दोनों सदाचारी और धार्मिक प्रवृत्ति के थे। प्रतिदिन दोनों एक साथ जिनेन्द्र-पूजन करते थे। दोनों ने ही रात्रि-भोजन, अनछना जल, जमींकन्द और चमड़े की वस्तुओं को पहनने का आजीवन त्याग कर दिया था। प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी और अन्य विशेष पर्वों पर भी वे संयम से काल व्यतीत करते थे। उनके जीवन में किसी प्रकार का कोई दुर्व्यसन नहीं था। मद्य-मांस तो बहुत दूर, वे कभी बीड़ी-सिगरेट तक नहीं पीते थे। कभी चाय भी अपने होठों से नहीं लगाते थे। रात्रि में भोज्य पदार्थ तो दूर, पेय पदार्थ भी वे कभी नहीं लेते थे। हाँ, एक औषध की बात और थी।

परन्तु शास्त्रज्ञान आगम को विशेष था। परमागम अभी इस ओर विशेष ध्यान नहीं देता था। वह अभी इसे अनावश्यक-सा भी समझता था। कभी-कभी आगम के साथ ही उसे जितना स्वाध्याय करना पड़ जाता था उसे ही हल्के मन से यथा-तथा करके छुट्टी पा लेता था।

अतः आगम ने परमागम को शास्त्र-स्वाध्याय करने-सुनने हेतु बारम्बार प्रेरित किया। परमागम ने शास्त्र प्रवचन सुनना प्रारंभ कर दिया। पहले ही दिन उसने सुना- समस्त शुभ क्रियाएँ और उनसे बंधनेवाला पुण्य भी वस्तुतः जीव को दुःख का कारण है, दुःखस्वरूप है, आस्रव है, बंध का कारण है, अतः हेय ही है, इससे आत्मा का हित नहीं होता।

यह सुनकर परमागम ने अपने समस्त शुभकर्मों को छोड़ दिया। वह स्वच्छन्द हो गया। अब वह न मन्दिर आता और न कभी व्रत-उपवास आदि धारण करता। प्रतिदिन जिनमंदिर आनेवाला और संयम से काल व्यतीत करनेवाला परमागम सब प्रतिदिन चौबीसों घण्टे विषय-कषायों और विकथाओं में ही लीन रहता। अब न उसे भक्ष्याभक्ष्य का विवेक रहा और न दिन-रात का।

इसप्रकार सदा साथ रहनेवाले आगम और परमागम अब एक दूसरे से दूर-दूर रहने लगे। दोनों का परिवेश और प्रकृति अब एकदम भिन्न-भिन्न हो गई। परमागम तो अब कतई नहीं चाहता था कि आगम उसके साथ रहे। उसे अब आगम बहुत बुरा लगने लगा था। परन्तु आगम ने कैसे भी हिम्मत करके समय निकालकर प्रतिदिन दो-एक घण्टे परमागम के साथ रहने का निर्णय किया, क्योंकि वह परमागम की इस दुर्दशा से बहुत चिन्तित था। वह कैसे भी करके अपने मित्र परमागम को सन्मार्ग पर लाना चाहता था। वह उसे बताना चाहता था कि पुण्य को हेय शुद्धभाव - वीतरागभाव अपनाने की प्रेरणा देने के लिए कहा है। पुण्य को हेय कहकर पाप में लगाने का अभिप्राय नहीं है। उपदेश तो ऊँचा चढ़ने के लिए दिया जाता है।

एक दिन की बात। वे दोनों बाजार में होकर निकल रहे थे। एक हलवाई भट्टी पर कड़ाही में कुछ बनाने की तैयारी कर रहा था। भट्टी बहुत तेज जल रही थी और कड़ाही में तेल गर्म हो रहा था। इसीसमय न जाने कहाँ

से, ऊपर से अचानक एक सर्प उस कड़ाही में गर्म-गर्म तेल में आकर गिर पड़ा। 'छप्प' आवाज होते ही हलवाई चौंक गया। उसने उसे बचाने के लिए तत्काल पलटे के द्वारा कड़ाही से बाहर उछाल दिया। सर्प कड़ाही से तो बाहर निकल आया, किन्तु दौड़कर भट्टी में घुस गया। देखते-देखते ही उसकी राख हो गई।

यह देखकर आगम और परमागम दोनों ही मित्रों का दिल दहल उठा। परमागम बोला- 'देखो मित्र ! यह सर्प कितना दुर्भाग्यशाली और नासमझ था जो कड़ाही में से निकला तो भट्टी में जा घुसा। अरे ! दयालु हलवाई ने इसे कड़ाही में से इसलिए थोड़ी निकाला था कि यह वहाँ से निकलकर भट्टी में जा घुसे।

यद्यपि आगम भी इस वैराग्य-प्रसंग से पूरी तरह भीगा हुआ था, वह किसी भी तरह की बात करने के 'मूड' में नहीं था, पर परमागम के उक्त उद्गार सुनकर उसने उसे सन्मार्ग पर लाने का यह अवसर खोना उचित नहीं समझा। उसने बड़े भीगे हृदय से अपने मित्र परमागम को समझाते हुए कहा-

"मित्र ! बुरा न मानना, तुम भी इस सर्प की तरह ही बड़े दुर्भाग्यशाली और नासमझ लगते हो। दयालु श्रीगुरु ने पुण्य को हेय इसलिए थोड़ी बताया था कि तुम उसे छोड़कर पाप में प्रवर्तन करने लगो। अरे ! वह तो भवतापहारी शुद्धभाव - वीतरागभाव की प्राप्ति की पावन प्रेरणा देने का अभिप्राय था।"

परमागम की आँखें खुल गई। उसे लगा- ऐसे अनुपम महामित्र का आभार वह कैसे व्यक्त करे ? उसने पुनः सर्व शुभक्रियाओं को यथावत् बल्कि और अधिक औचित्य के साथ अपनाया और निश्चय ही एक दिन शुद्धभाव - पूर्ण वीतरागभाव की प्राप्ति कर ली।

आगम और परमागम की मैत्री सही अर्थों में अब बनी।

मुक्ति का उपाय

-प्रो. वीरसागर जैन

एक महात्माजी थे। वे वाराणसी में अपने आश्रम में भक्तगणों के साथ सदैव ज्ञान-ध्यान में लीन रहते थे। उनके पास एक तोता भी था, जो वातावरण के प्रभाव से मनुष्य की बोली में भी कुछ अच्छे-अच्छे शब्द बोलना सीख गया था। आने-जाने वालों से वह कहता- जय जिनेन्द्र! आइए !! पधारिए !!! इत्यादि। लोग उससे बहुत प्रभावित होते।

एक दिन की बात- चार लुटेरे बदमाश लोग आश्रम से गुजर रहे थे। उन्होंने जब तोते को मनुष्य की बोली में अच्छी-अच्छी बातें बोलते देखा तो उनका मन उसे अपने घर ले जाने का हो गया। उन्होंने महात्माजी से कहा- ये तोता हमें चाहिए।

महात्माजी- यह तोता बिकाऊ नहीं है, आगे जाओ।

लुटेरे- ए बुढ़े ! सीधे से देता है या नहीं?

महात्माजी समझ गये कि ये पापी लोग हैं और तोते को ले जाए बिना नहीं रहेंगे। वे मन मसोस कर रह गये। लुटेरे तोते को लेकर अपने घर चले गये।

किन्तु लुटेरों के घर का वातावरण तो बिल्कुल विपरीत था, अतः तोते का वहाँ मन नहीं लगा, वह बहुत उदास रहने लगा।

एक दिन की बात, वे लुटेरे पुनः वाराणसी जा रहे थे। जाते समय उन्होंने तोते से कहा- हम आज तेरे गुरुजी के पास जा रहे हैं, कोई काम हो तो बता दे।

तोता बोला- मेरा एक प्रश्न है, आप गुरुजी से उसका उत्तर पूछ आना। प्रश्न है- मुक्ति का क्या उपाय है?

जैसे ही वे लुटेरे महात्माजी के आश्रम में पहुंचे तो उन्हें देखते ही महात्माजी ने पूछा- भैया ! मेरा तोता तो ठीक है न? कैसा है? क्या करता रहता है?

लुटेरे- वह बिल्कुल ठीक है, सदा ही गहरे चिन्तन-मनन में डूबा रहता है। यद्यपि यहाँ आपके आश्रम जैसा प्रसन्न तो वहाँ नहीं रहता है, उदास-सा ही बना रहता है, पर उसने आपसे एक प्रश्न पूछा है कि मुक्ति का क्या उपाय है। आप उसका उत्तर बता दो, हम जाकर उसे बता देंगे।

महात्माजी सारी बात समझ गये कि तोता वहाँ बहुत दुखी है और वहाँ से छुटकारा चाहता है, परन्तु उन लुटेरे बदमाश लोगों को कैसे क्या कहते ? अतः श्वास- निरोध करके कायोत्सर्ग करने लग गये।

आतंकवादी ध्यान की इस स्थिति को क्या जानते? उन्होंने तो समझा कि महात्माजी मर गये और कहीं उन पर ही उन्हें मारने का आरोप न लग जाए, पुलिस उन्हें पकड़ न ले- इस डर से घबराकर वे वहाँ से ऐसे भागे कि अपने घर ही आकर रुके।

घर पहुँचते ही तोते ने पूछा- मेरे गुरुजी से मिले क्या? कैसे हैं वे? मेरा प्रश्न पूछा क्या? क्या उत्तर दिया उसका उन्होंने?

लुटेरे- अरे थोड़ी साँस तो लेने दे, बड़ी जोर से डर कर भाग कर आये हैं।

तोता- क्यों क्या हुआ?

लुटेरे- अरे, तेरे गुरुजी एकदम अच्छे थे, तेरे बारे में हमसे ठीक तरह बात भी कर रहे थे, पर जैसे ही हमने तेरा प्रश्न पूछा कि मुक्ति का क्या उपाय है, वे तो मर गये। हमने सचमुच कुछ भी नहीं किया, पर लोग हमें ही पकड़ लेते कि हमने कुछ कर दिया होगा, अतः हम तो अपने प्राण बचाकर भाग आये।

अब्वल उस्ताद को इशारा ही काफी है। तोता समझा गया कि मुक्ति का उपाय क्या है और उसने भी गुरुजी की तरह कायोत्सर्ग /ध्यान करना प्रारंभ कर दिया।

आतंकवादी यहाँ भी ध्यान की स्थिति को नहीं समझ सके। उन्हें लगा- लो, यह तोता भी मर गया। पता नहीं आज क्या बात है, इसके गुरुजी से बात की तो वे मर गये और अब इस तोते से बात की तो यह भी मर गया। अब क्या करें ?

खैर, उन्होंने पिंजरा खोला और तोते को उठाकर बाहर फेंक दिया। तोता जमीन में गिरने की बजाय यह कहते हुए आकाश में उड़ गया कि- मिल गया मुक्ति का उपाय! टाटा बाय बाय!!

इस कथानक का मुख्य सन्देश यही है कि- ध्यान /आत्मध्यान ही सर्व दुःखों से मुक्ति का एक मात्र उपाय है। ध्यान से लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं। संसार की अनंत समस्याओं का एक ही समाधान है- ध्यान /आत्मध्यान।

पिताजी की कहानियाँ

शब्द मत पकड़ो, उनका आशय समझो

कहानी नम्बर 1

सेठ जिनदत्त के चार पुत्र थे। उन्होंने जीवन भर पिता की शिक्षाओं पर ध्यान नहीं दिया। पिता का अंतिम समय आ गया। पुत्र बोले- पिताजी ! आप तो जा रहे हो, हमारा क्या होगा, हमने तो आपसे कुछ सीखा ही नहीं। पिताजी बोले- क्या करूँ बेटा, मैंने तुमसे बहुत कहा था, पर तुमने ध्यान ही नहीं दिया। खैर, अब सुनो, नित्य दुकान पर छाया में जाना, छाया में आना और खूब मीठा खाना, सुखी रहोगे। सेठजी चले गये।

अब चारों पुत्र छाता लेकर दुकान पर जाते, छाता लेकर ही वापिस आते और लौटते समय मिठाई की दुकान से बहुत सारी मिठाइयाँ खरीदकर लाते और घर बैठकर खाते।

परन्तु यह क्या, उन्हें तो कोई लाभ नहीं हुआ, न तो दुकान ही जमी, न ही स्वास्थ्य।

एक दिन उन्हें अपने पिताजी के मित्र मिले। उन्होंने सारी बात उनको बताई। वे बोले- अरे बेटा, तुम पिताजी की बात का आशय नहीं समझे, खाली शब्द पकड़कर बैठ गये, इससे तुम्हारा भला नहीं होगा। देखो सुनो, 'छाया में जाना, छाया में आना, खूब मीठा खाना' -इस कथन से उनका आशय था कि प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व दुकान पर चले जाना और सायंकाल सूर्यास्त के बाद ही घर लौटना, खूब परिश्रम करना और उसके बाद ही भोजन करना, ताकि सरस लगे।

पुत्र अब पिताजी का आशय समझे और उनका जीवन सुखमय हो गया।

कहानी नम्बर 2

सेठ अर्हदास के भी चार पुत्र थे। उन्होंने भी जीवन भर पिता की शिक्षाओं पर ध्यान नहीं दिया। पिताजी का अंतिम समय आ गया। पुत्र बोले- पिताजी ! आप तो जा रहे हो, हमारा क्या होगा ? पिताजी बोले- चिंता मत करो बेटा, मैंने तुम्हारे लिए मन्दिर के शिखर के नीचे धन गाढ़कर रखा है, भाद्रपद शुक्ला पंचमी को दोपहर में तीन बजे खोदकर निकाल लेना, सुखी रहोगे। सेठजी चले गये।

भाद्रपद शुक्ला पंचमी को दोपहर में तीन बजने से पहले ही चारों पुत्र मन्दिर पहुँच गये और मन्दिर के शिखर को तोड़ने की तैयारी करने लगी। तुरंत सारी समाज इकट्ठी हो गई। झगड़ा होने लगा। पुत्र कहते थे कि शिखर के नीचे हमारे पिताजी ने धन गाढ़ा है, हम निकालेंगे और समाज कहती थी कि तुम्हें मन्दिर का शिखर नहीं तोड़ने देंगे।

आखिरकार एक वयोवृद्ध व्यक्ति ने सबको शान्त कराकर पूरी बात ठीक से समझाई कि 'शिखर के नीचे' का अर्थ है- 'शिखर की छाया के नीचे', तभी तो उसमें दिन एवं समय का भी उल्लेख किया गया है।

इसके बाद पृथ्वी पर उस जगह खुदाई की गई, जहाँ शिखर की छाया पड़ रही थी। वहाँ पिताजी का गाढ़ा हुआ खजाना मिल गया और पुत्र प्रसन्न हो गये।

अहिंसा का मार्ग

विलासपुर नगर में निशांत नाम का एक राजा रहता था। वह अत्यन्त हिंसक व क्रूर था।

एक दिन वह शिकार हेतु वन में गया। उसने बहुत जीवों को मारा और उनके खून से लथपथ कलेवर (शरीर) को अपने कन्धों पर लटकाकर घर लौटने लगा।

किन्तु वह उस घने जंगल में से निकलने का मार्ग ही भूल गया। उसने बहुत खोजा इधर से उधर चल-चलकर, परन्तु उसे मार्ग नहीं मिल रहा था। वह जाते समय तो चला गया, परन्तु अब निकल नहीं पा रहा था, वह बहुत थक गया।

आखिरकार उसे एक स्थान पर एक ध्यानस्थ मुनिराज मिले। उसने सोचा इन्हें अवश्य मार्ग पता होगा, अतः वह उन्हीं से बार-बार मार्ग बताने का अनुरोध करने लगा।

मुनिराज का ध्यान भंग हुआ। वे अपनी आँखों के सामने खून से लथपथ ऐसे क्रूर व्यक्ति को खड़े देखकर अत्यधिक अशांत हो गए और पुनः आत्मध्यान हेतु आँखें बन्द करने लगे। तभी निशांत ने फिर पूछा - "मुझे मार्ग तो बता दो"।

उसके स्वर में कातरता आ गई थी, वह बुरी तरह फंस जो गया था। कोई एक पुरुष तो बड़ी मुश्किल से मिला था, यदि यह भी मार्ग न बताये तो क्या होगा ?

किन्तु मुनिराज को ऐसे क्रूर परिणामी से एक शब्द भी बोलने का भाव नहीं हो रहा था। तथापि कुछ क्षण बाद ही मुनिराज को एक उपाय सूझा और उन्होंने उस शिकारी राजा से कहा-

“जीव वद्धंता नरक गइ, अवद्धंता सगग।

मैं जाणू बे बाटणी, जिहँ इच्छा तिहँ गच्छ ॥”

अर्थात् हे भाई ! जीव-वध करने से नरक का मार्ग प्राप्त होता है और जीव-दया से स्वर्ग का मार्ग प्राप्त होता है। मैं तो बस ये दो मार्ग ही जानता हूँ, तुम्हें इन दोनों में से जो अच्छा लगे, उसी मार्ग पर चले जाओ।

राजा निशांत की भवितव्यता पक चुकी थी, उसकी अज्ञानरूपी निशा का अंत निकट आ गया था। उसने मुनिराज से उक्त बात को भलीभांति विस्तारपूर्वक समझाने का निवेदन किया।

मुनिराज की अमृतवाणी सुनने के बाद उसने सदा के लिए हिंसा का मार्ग छोड़कर अहिंसा का मार्ग अपना लिया।

दुर्बल को न सताइए

एक गोरैया (छोटी चिड़िया) थी। वह एक पेड़ पर अपने घोंसले में अपने छोटे-छोटे बच्चों के साथ आराम से रह रही थी।

एक दिन की बात, एक हाथी आया और उस पेड़ को जोर-जोर से हिलाने लगा।

यह देखकर वहीं एक कठफोड़वा बैठा था, उसने उस हाथी को समझाया कि दादा ! ऐसा न करो, ऊपर पेड़ पर चिड़िया के छोटे-छोटे बच्चे हैं, वे गिर जाएंगे, मर जाएंगे।

परन्तु हाथी नहीं माना, बल्कि और भी जोर-जोर से हिलाने लगा।

चिड़िया के बच्चे गिरकर मर गये। चिड़िया रोने लगी।

कठफोड़वे ने चिड़िया को धैर्य बंधाया और हाथी को दंडित करने की योजना बनाई। उसने इसके लिए अपने दोस्त मेंढक एवं मधुमक्खी को भी बुलाया। सबके मिलकर योजना तैयार की।

योजना के अनुसार सर्वप्रथम मधुमक्खी ने हाथी के कान में संगीत बजाया। हाथी आँखें बन्द करके संगीत के आनन्द में झूमने लग गया। तभी कठफोड़वे ने आकर हाथी की आँखें फोड़ दीं।

अब हाथी बैचेन होकर भागने लगा। उसे पानी पीने की इच्छा हुई। वह पानी ढूँढने लगा।

तभी मेंढक ने एक गहरे सूखे गड्ढे में बैठकर टर्-टर् की आवाज करना शुरू कर दिया। हाथी पानी समझकर उस गहरे एवं सूखे गड्ढे में जा गिरा।

इस कहानी से हमें शिक्षा मिलती है कि कभी भी अपनी शक्ति का अहंकार न करना चाहिए, किसी दुर्बल या छोटे को न सताना चाहिए, यदि छोटे भी संगठित हो जाएँ तो बड़ों को पराजित कर सकते हैं।

चिड़िया और चूहिया

एक थी चिड़िया, एक थी चूहिया । दोनों दोस्त थीं ।

एक दिन की बात, वे दोनों कहीं घूमने जा रही थीं । रास्ते में एक जगह बहुत सारा गोबर पड़ा हुआ था। चूहिया बोली- देखें, कौन इसे पहले पार करता है ?

चिड़िया ने समझाया- इस समय पहले-पीछे की बात मत करो, यह स्पर्द्धा का अवसर नहीं है, खतरा है, सावधानी से निकलो । परन्तु चूहिया न मानी, स्पर्द्धा (शर्त) ही लगवा दी ।

चिड़िया को क्या था, वह तो फुर्र से उड़कर पार कर गई, पर चूहिया गोबर में फंस गई । चिड़िया ने उसे पूँछ पकड़कर गोबर से बाहर निकाला और कहा- देख, अभी तू मर जाती, इसीलिए मैंने कहा था कि सावधानी से चलो, स्पर्द्धा मत करो । परन्तु चूहिया बोली- मैं ऐसे कैसे मर जाती? मैं तो जरा अपने शरीर पर मेंहदी लगा रही थी ।

चिड़िया क्या बोलती, चुप रह गई ।

आगे चलकर फिर उनको एक जगह एक काँटों की बड़ी झाड़ी मिली । फिर से वैसा ही सब हुआ । चूहिया ने कहा- देखें, कौन इसे पहले पार करता है और चिड़िया ने उसको समझाया कि इस समय पहले-पीछे की बात मत करो, खतरा है, सावधानी से निकलो । परन्तु चूहिया फिर नहीं मानी, स्पर्द्धा ही लगवा दी ।

चिड़िया को तो अब भी क्या था, वह तो फुर्र से उड़कर झाड़ी को पार कर गई, पर चूहिया झाड़ी में फंस गई । चिड़िया ने फिर से उसे पूँछ पकड़कर झाड़ी से बाहर निकाला और कहा- देख, अभी फिर से तू मर जाती, मैंने तुझे कहा था कि सावधानी से चलो, स्पर्द्धा मत करो ।

परन्तु चूहिया बोली- मैं ऐसे कैसे मर जाती ? मैं तो जरा अपने नाक-कान छिदवाने लग गई थी ।

चिड़िया को दुःख हुआ, पर चुप रह गई ।

आगे चलने पर उनको एक नदी मिली । यहाँ भी फिर से वैसा ही सब हुआ । चूहिया ने कहा- देखें, कौन इसे पहले पार करता है और चिड़िया ने उसको समझाया कि पहले-पीछे की बात मत करो, खतरा है, सावधानी से निकलो । परन्तु चूहिया नहीं मानी, स्पर्द्धा ही लगवा दी ।

चिड़िया तो फुर्र से उड़कर नदी को पार कर गई, पर चूहिया नदी में बहने लग गई। चिड़िया ने जोर से उड़कर उसकी पूँछ पकड़ी और मुश्किल से नदी से बाहर निकाला और कहा- देख, अभी फिर से तू मर जाती, मैंने तुझे कहा था कि सावधानी से चलो, स्पद्धा मत करो।

परंतु चूहिया बोली- मैं ऐसे कैसे मर जाती ? मैं तो जरा गंगास्नान करने लग गई थी।

चिड़िया को बहुत दुःख हुआ, पर क्या कहती, चुप रह गई।

आगे चले तो एक रेलवे क्रॉसिंग आई। यहाँ भी वही सब हुआ। चूहिया ने कहा- देखें, कौन पहले पार करता है और चिड़िया ने उसको समझाया कि पहले-पीछे की बात मत करो, खतरा है, सावधानी से निकलो। परन्तु चूहिया नहीं मानी, स्पद्धा ही लगवा दी। चिड़िया तो फुर्र से उड़कर रेलवे क्रॉसिंग को पार कर गई, पर तभी अचानक एक ट्रेन आ गई और चूहिया उसके नीचे आने वाली थी किन्तु चिड़िया ने फुर्ती से उड़कर चूहिया को पूँछ पकड़कर खींच लिया और कहा- देख, अभी तू फिर से मर जाती, मैंने तुझे कहा था कि सावधानी से निकलो, स्पद्धा मत करो।

परंतु चूहिया नाराज होकर बोली- मैं ऐसे कैसे मर जाती ? मैं तो जरा अपनी कमर दबवाने की सोच रही थी। तूने बल्कि मेरा अवसर गँवा दिया। तू हमेशा मेरा नुकसान कर देती है।

अब चिड़िया बोली- आज से तेरी मेरी दोस्ती खत्म।

शिक्षा ही उन्नति का आधार है

एक ग्राम था। उसमें लगभग सभी लोग विविध अपराधों में लिप्त थे। जैसेकि व्यापारी कम तोलना, मिलावट करना आदि अपराध करते थे तथा कर्मचारी कामचोरी, रिश्वतखोरी आदि में लिप्त थे।

वहाँ के राजा ने अनेक कठोर दण्ड के नियम बनाये, लेकिन नागरिकों की आपराधिक गतिविधियों में कोई सुधार नहीं हुआ।

उसी ग्राम में कोई एक साधु पुरुष भी रहता था, जो न्याय-नीति एवं संतोषपूर्वक जीवन-यापन करता था। एक दिन एक ग्रामीण व्यक्ति उसके पास शिक्षा प्राप्त करने आया, और फिर प्रभावित होकर वह प्रतिदिन ही पढ़ने आने लगा। साधु पुरुष उसे प्रतिदिन पढ़ाने लगे। इससे उस ग्रामीण व्यक्ति का जीवन बहुत उन्नत हो गया। उसकी देखा-देखी अनेक लोग उस साधु पुरुष के पास पढ़ने आने लगे। साधु पुरुष उन सबको अलग-अलग समय देकर पढ़ाने लगे।

किन्तु इसके कारण वे साधु पुरुष इतने अधिक व्यस्त हो गये कि उन्हें भोजन बनाकर खाने का भी समय मिलना मुश्किल हो गया, विश्राम आदि की बात तो दूर। अतः एक दिन उनके सभी विद्यार्थियों ने मिलकर उनसे निवेदन किया कि 'गुरुजी! क्यों न आप हम सबको एक ही साथ पढ़ा दें, ताकि आपका समय बच जाये। किन्तु गुरुजी ने कहा- "नहीं, ऐसा संभव नहीं है, क्योंकि मेरी कुटिया में तुम सबको एक साथ बैठने की जगह नहीं है।" इस पर विद्यार्थियों ने सुझाव दिया कि वे राजा से कहकर इसके लिए कोई अन्य अच्छा-सा स्थान प्राप्त कर लें।

विद्यार्थियों के आग्रह पर गुरुजी राजा के पास गये। राजा ने उन्हें सम्मानपूर्वक एक अच्छा-सा स्थान वटवृक्ष के नीचे अध्ययन-अध्यापन हेतु दे दिया।

अब तो प्रतिदिन ही उस वटवृक्ष के नीचे एक सुन्दर पाठशाला चलने लग गई। विद्यार्थियों की संख्या भी बहुत बढ़ गई। शनैः-शनैः लगभग पूरा ग्राम ही पढ़ने आने लगा। दिन बीतते गये, ग्राम में से भ्रष्टाचार आदि अपराध समाप्त होने लग गये।

एक दिन की बात, राजा ने सहज ही अपने मंत्री से पूछा- "मन्त्रिवर ! क्या कारण है कि आजकल दरबार में आपराधिक शिकायतें बहुत कम आ रही हैं ?"

मंत्री- "राजन् ! यह सब उन गुरुजी की पाठशाला का कमाल है, जिन्हें आपने वटवृक्ष के नीचे भूमि प्रदान की थी।" राजा ने पूछा- "वह कैसे?"

इस पर मंत्री ने उत्तर दिया- "राजन्! क्या बताऊँ आपको, वहाँ पर लोगों को ज्ञान की बड़ी अच्छी-अच्छी बातें बताई जाती हैं जिससे लोग अपराधों को छोड़कर अच्छाइयों के रास्ते पर चल पड़े हैं।"

राजा- “अरे वाह ! जो काम हमारे कठोर दण्डों से भी नहीं हो पा रहा था, वह एक छोटी-सी पाठशाला से हो गया ! हम कल ही उस पाठशाला को देखने जाएँगे ।”

शीघ्र ही गुरुजी को संदेश भेज दिया गया कि कल राजा स्वयं आपकी पाठशाला देखने आएँगे; किन्तु यह क्या, गुरुजी प्रसन्न होने की बजाय चिंतित हो उठे और तत्काल राजा के पास पहुँच गये- “राजन्! मेरे योग्य जो भी सेवा हो, मैं तैयार हूँ, परन्तु कृपा कर पाठशाला में मत पधारिए ।”

राजा- “अरे! लोग तो हमें बार-बार प्रार्थना करके बुलाते हैं और फिर भी हम नहीं जाते हैं और तुम्हारी पाठशाला में हम स्वयं आगे से आ रहे हैं फिर भी तुम मना कर रहे हो ! क्या बात है ?”

गुरुजी कोई उत्तर नहीं देना चाहते थे, किन्तु राजा ने बहुत आग्रह किया तो विनयपूर्वक बोले- “राजन्! दरअसल बात यह है कि जब आप मेरी पाठशाला में पधारेंगे तो मैं अपने आसन से उठकर आपको अपना आसन दूंगा और आपको प्रणाम भी करूंगा । इससे मेरे विद्यार्थी आपको मुझसे अधिक बड़ा और अच्छा समझेंगे और आप जैसा बनने का प्रयत्न करेंगे। इससे मेरी पाठशाला का प्रयोजन ही अन्यथा हो जाएगा। मैं चाहता हूँ कि ये ग्रामीण एक अच्छे नागरिक बनें जो न्याय, नीति, संतोष अनुशासन आदि अनेक जीवनमूल्यों के साथ समाज की सेवा करते हुए उत्कृष्ट जीवन-यापन करें। मैं नहीं चाहता कि वे राजनीति के किसी भी बुरे कार्य में उलझ जाएँ।”

गुरुजी के उत्तर से राजा बिल्कुल नाराज नहीं हुआ, अपितु बहुत सन्तुष्ट व प्रसन्न हुआ, परन्तु उसने कहा- “गुरुदेव! अब आप मेरा भी आदेश सुन लीजिए। मैं कल पाठशाला में अवश्य ही आऊँगा और उस समय आपको अपने आसन से बिल्कुल नहीं उठना है, आप मुझे प्रणाम भी नहीं करेंगे, बल्कि मैं ही आपको प्रणाम करूँगा और विद्यार्थियों के आसन पर ही बैटूँगा। मैं सबको स्पष्ट संदेश देना चाहता हूँ कि संसार में राजा नहीं, गुरु/शिक्षक सबसे महान् होता है।”

राजा ने अपने आदेशानुसार पाठशाला में जाकर शिक्षक की महानता का संदेश दिया। सभी ग्रामवासियों ने शिक्षा प्राप्त कर अपने ग्राम को स्वर्ग से भी सुंदर बना दिया। निष्कर्ष यह है कि अशिक्षा दुःख एवं अपराधों की जननी है और शिक्षा ही उन्नति का आधार है। कहा भी गया है कि-

1. “किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या” अर्थात् विद्या कल्पलता के समान सब-कुछ सिद्ध करती है।
2. “स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।” अर्थात् राजा तो केवल अपने देश में ही पूजा जाता है, परन्तु विद्वान् सर्वत्र पूजा जाता है।
3. “न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।” अर्थात् ज्ञान के समान पवित्र विश्व में कुछ भी नहीं है।